

दार्शनिक विमर्श और राजनीतिक यथार्थवादः

## वैश्विक पश्चिम

20वीं सदी की विरासत

*डॉ. स्टीफन होगल द्वारा लिखित निबंध*

*एक दार्शनिक का आह्वान*

*सॉफ्टवेयर-जनित अप्रमाणित अनुवाद*

सदी के पहले चतुर्थांश का संस्करण  
सामग्री सूची



## विषय-सूची

दर्शन, इतिहास, राजनीति: राजनीतिक यथार्थवाद और वैश्विक पश्चिम 5

वैश्विक पश्चिम: सार्वभौमिक संप्रभुता का दर्शन और दृष्टि 7

पश्चिम के स्वयंसिद्धांत

18

उपसंहार: आने वाली चौथाई सदी के लिए तीन सूत्र

19

मेरे जाने के बाद इतिहास मेरे बारे में चाहे कुछ भी कहे, मुझे उम्मीद है कि वह यह दर्ज करेगा कि मैंने आपके सबसे बुरे डर के बजाय, आपके सर्वोत्तम आशाओं का आह्वान किया; आपके संदेहों के बजाय आपके भरोसे का सहारा लिया। मेरा सपना है कि आप आगे का रास्ता स्वतंत्रता के दीपक की रोशनी में तय करें, जो आपके कदमों का मार्गदर्शन करे, और अवसर का हाथ आपका साथ दे।

रॉनाल्ड रीगन (1911-2004)<sup>1</sup>

## मित्रता के लिए समर्पित

---

<sup>1</sup> 17 अगस्त 1992 को रिपब्लिकन नेशनल कन्वेंशन में दिए गए एक भाषण से। रोनाल्ड रीगन संयुक्त राज्य अमेरिका के 40 वें राष्ट्रपति थे और उन्होंने तत्कालीन सोवियत संघ के नेता मिखाइल गोर्बाचेव के साथ एक दूरगामी डीटेंटे प्रक्रिया शुरू की।





निंदक मूल्य को समतुल्य और साधन-स्वरूप मानते हैं। राजनेता व्यावहारिक निर्णयों को नैतिक आस्थाओं पर आधारित करते हैं। .... मेरे लिए, वास्तविक राजनीति (realpolitik) की एक समझदारी भरी परिभाषा यह कहना है कि ऐसी वस्तुनिष्ठ परिस्थितियाँ हैं जिनके बिना विदेश नीति नहीं चलाई जा सकती। जिन परिस्थितियों से उन्हें निपटना है, उन्हें देखे बिना राष्ट्रों के भाग्य से निपटने का प्रयास पलायनवाद है।<sup>1</sup>

हेनरी ए. किसिंजर (1923-2023)

## दर्शन – इतिहास – राजनीति: राजनीतिक यथार्थवाद और वैश्विक पश्चिम

किसी ऐतिहासिक युग के अंत में दर्शन, राजनीति और विश्व इतिहास शायद ही कभी 20वीं सदी की तरह इतने नाटकीय रूप से एक-दूसरे में गुंथे हों, जिसके परिणामों के बीच हम आज भी जी रहे हैं। इसके कैलेंडर अंत के एक चौथाई सदी बाद भी, इसकी विरासत पर शायद ही कोई ध्यान देता है, और यही कारण है कि कई राजनीतिक संघर्षों में कमी का कोई संकेत नहीं दिख रहा है। यह विशेष रूप से विश्व राजनीतिक मंच पर स्पष्ट है, जहाँ कई तनाव और मोर्चे बने हैं। स्थिति की जटिलता अब कई समकालीनों को असमंजस में डाल देती है, और एक बेहतर भविष्य की पूर्व आशा अब लंबे समय से हार मान लेने की भावना में बदल गई है।

विशेष रूप से अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में, हमें ऐसे राजनेताओं की आवश्यकता है जो कपटपूर्ण महत्वाकांक्षाओं से प्रेरित न हों, बल्कि जो अपने पद का प्रयोग व्यक्तिगत जिम्मेदारी और आवश्यक दूरदर्शिता के साथ करें, दूसरे शब्दों में, जो वास्तविक राजनीति (realpolitik) को समझते हों। यदि, जैसा कि हेनरी किसिंजर, जिन्हें वास्तविक राजनीति के एक उत्कृष्ट राजनेता माना जाता है, ने उपरोक्त उद्धरण में कहा है, इसका अर्थ है वस्तुनिष्ठ परिस्थितियों को ध्यान में रखना, तो हमें एक ऐसे नाविक की आवश्यकता है जो मौजूदा परिस्थितियों, यानी वास्तविकता से निर्देशित हो।

वास्तव में, कोई भी जो एक जहाज को खतरनाक पानी से गुज़ारना चाहता है, उसे हमेशा दूसरे जहाजों, अपनी क्षमता और संभावित दुश्मनों की क्षमताओं पर नज़र रखनी चाहिए। पतवार संभालने वाला उस हर चीज़ पर ध्यान देगा जो प्रासंगिक हो सकती है। उसके लिए, जो मायने रखता है वह तथ्य, वास्तविक परिस्थितियाँ हैं: यथार्थवादी दृष्टिकोण।

<sup>1</sup> 5 जुलाई 2009 को प्रकाशित पत्रिका डेर स्पीगल (28/2009) के एक साक्षात्कार से।

हालाँकि, उसका आदर्शवादी मन महासागर के क्षितिज से परे देखने की हिम्मत करता है – उसकी छाती में दो आत्माएँ धड़कती हैं<sup>2</sup>। तूफानी समुद्र में भी, यह आशा और आत्मविश्वास के द्वीपों की तलाश करता है। चाँदनी में, कप्तान शांति और दोस्ती के गीत गुनगुनाता है, वैश्विक भाईचारे के ऐसे भजन जो उसके दिल को छू जाते हैं। लेकिन उग्र समुद्र के तूफान इन नाजुक धुनों को दबा देते हैं। आदर्श तारों भरे रात के आकाश पर एक नज़र डालने जैसे हैं: कौन जाने कि हर कोई कभी उनमें एक ही संदेश पाएगा?

तथ्यों और दृष्टिकोणों के बीच द्वंद्व में, दोनों मोर्चों के बीच एक तीसरा आयाम उभरा है जिसे अनुभवी नाविकों को ध्यान में रखना चाहिए: जल की गहराइयों की स्थितियाँ - पानी के भवर और धाराएँ जो आसानी से दिखाई नहीं देतीं लेकिन निस्संदेह मौजूद होती हैं। ये पानी की अभिव्यक्तियाँ हैं, इसके मौलिक गुण, अब बड़े पैमाने पर। नदियों, झीलों और समुद्रों में, इसका व्यवहार वास्तविकता का एक हिस्सा है और इस प्रकार यह नौवहन को प्रभावित करता है।

गहराइयों में झाँकने का वास्तव में अर्थ है मानव स्वभाव, मानवीय स्थिति - *conditio humana* को देखना। कोई व्यक्ति राजनीति के सार को समझने की कोशिश कैसे कर सकता है, जबकि उसके मूलभूत तत्वों के रूप में मनुष्यों को अनदेखा किया जाए? निश्चित रूप से, अस्तित्व संबंधी प्रश्न शुरू में दार्शनिक-धार्मिक क्षेत्र से संबंधित होते हैं, अक्सर व्यक्तिगत महत्व के साथ। हालाँकि, अंततः, मानव स्वभाव एक व्यापक विश्वदृष्टिकोण में बुना जाता है जिसकी दूरगामी महत्ता है। लेकिन क्या होगा अगर इस वास्तविकता की गहराई से ऐसे प्रवाहों का पता लगाया जा सके जो एक स्थिर स्थिरांक बनाते हैं - और इसलिए वास्तविक हैं?

एक आदर्शवादी सिद्धांत अपनी ठोस आधार खोने से बचने के लिए ही दार्शनिक विमर्श की तलाश करेगा, क्योंकि उसे हमेशा सर्वोत्तम को ध्यान में रखना चाहिए। लेकिन राजनीतिक यथार्थवाद को मानवीय स्थिति पर और भी अधिक ध्यान केंद्रित करना होगा: मौलिक अस्तित्वगत प्रश्नों पर विश्लेषणात्मक रूप से चर्चा करने के लिए कम, और व्यावहारिक परिणामों की गणना करने के लिए अधिक। केवल तभी जब वास्तविकता के सभी पहलुओं को ध्यान में रखा जाता है, तब ही *वास्तविक वास्तविक राजनीति* की बात की जा सकती है।

यह कार्य इसी व्यापक दृष्टिकोण को समर्पित है। *वैश्विक पश्चिम का* 20वीं सदी के इतिहास से एक विशेष तरीके से जुड़ाव है, भले ही इसकी जड़ें अतीत में कहीं गहरी तक जाती हैं। इसकी नींव मानव स्थिति से गहराई से जुड़ी हुई है, और इसके राजनीतिक, विशेष रूप से भू-राजनीतिक, परिणाम एक ऐसे युग की ओर इशारा करते हैं जिसकी अभी भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। वैचारिक और सारगर्भित विश्लेषण पश्चिम के मौलिक axioms पर

<sup>2</sup> किसिंजर: "आदर्शवाद के तत्व के बिना कोई यथार्थवाद नहीं है!"

पहुंचता है और उन सिद्धांतों को सूचीबद्ध करता है जिन्हें *वास्तविक* वास्तविकनीति को भविष्य में ध्यान में रखना चाहिए।

## वैश्विक पश्चिम सार्वभौमिक संप्रभुता का दर्शन और दृष्टिकोण

*संघर्ष और बयानबाज़ी*

राजनीतिक परिदृश्य में एक नया शब्द आया है: *वैश्विक पश्चिम*। इसके पहले दो अवधारणाएँ आईं जो 20वीं सदी के अंतिम दशक में ही लोकप्रिय हुईं: *वैश्वीकरण*, जो बढ़ती वैश्विक आपसी जुड़ाव और परस्पर निर्भरता का वर्णन है, और *वैश्विक दक्षिण*, जो विकासशील देशों के लिए एक अधिक मैत्रीपूर्ण शब्द है।<sup>3</sup>

<sup>4</sup>सहस्राब्दी के मोड़ के बाद ही धीरे-धीरे *वैश्विक पश्चिम* की बात शुरू हुई और अब यह राजनीतिक, और विशेष रूप से भू-राजनीतिक, भाषा में अपना स्थान बना चुकी है। इसका आमतौर पर उन सभी राज्यों को संदर्भित करना है जिन्हें कभी *पश्चिमी दुनिया* या *पश्चिम* का हिस्सा माना जाता था, उस समय जब 20वीं सदी के दूसरे छमाही में पूर्व-पश्चिम संघर्ष हावी था। पश्चिमी पक्ष में संयुक्त राज्य अमेरिका के नेतृत्व वाली संवैधानिक सरकारों वाले उदार लोकतंत्र, यानी औद्योगिकीकृत देश थे, जिनका पूर्वी पक्ष में सोवियत संघ के सहयोगियों द्वारा विरोध किया जाता था। जब यूरोप का विभाजन समाप्त हुआ, तो वैश्वीकरण की बात जल्द ही सामने आई, और वह केवल वैश्विक व्यापार के संबंध में ही नहीं थी। ऐसा लगता था कि दुनिया एक वैश्विक गाँव बन गई है जिसमें ग्रह की समस्याओं को अब बेहतर ढंग से हल किया जा सकता है। संयुक्त राष्ट्र जैसे संगठनों के ढांचे के भीतर, अंतिम लक्ष्य एक 'वैश्विक घरेलू नीति' स्थापित करना था। इस प्रकार, 1990 का दशक सापेक्ष तनाव-निवारण का दशक बन गया।

<sup>3</sup> हालांकि दोनों शब्दों का पता 1950 और 1960 के दशक में लगाया जा सकता है, 1980 के दशक तक उनका उपयोग केवल कभी-कभी ही होता था। यही बात "ग्लोबल नॉर्थ" शब्द पर भी लागू होती है।

<sup>4</sup> हालांकि यह शब्द पहली बार 1963 में भौतिक विज्ञानी और दार्शनिक कार्ल फ्रेडरिक वॉन वाइज़सेकर द्वारा इस्तेमाल किया गया था, लेकिन इसे यूरोप में लोकतांत्रिक उथल-पुथल के साथ ही लोकप्रियता मिली।

अब, दशकों बाद, जब लोग ग्लोबल वेस्ट के बारे में बात करते हैं, तो यह आमतौर पर तानाशाही<sup>5</sup> और निरंकुश राज्यों द्वारा एक अलंकारिक हमला होता है। वे एक शक्तिशाली, वैश्विक रूप से सक्रिय गठबंधन की तस्वीर पेश करने की कोशिश कर रहे हैं जो सभी अन्य राज्यों के लिए खतरा है। उनके विरोध में ग्लोबल साउथ के देश हैं, जो देशों का एक अस्पष्ट रूप से परिभाषित समूह है जिनकी महत्वाकांक्षाएं अलग-अलग हैं, लेकिन उन्हें किसी भी हाल में ग्लोबल वेस्ट का हिस्सा नहीं माना जाता, बल्कि इसके शिकार माना जाता है। जब संदेह होता है, तो तानाशाही राज्य खुद को ग्लोबल साउथ में शामिल मानते हैं या कम से कम इसके साथ अपनी एकजुटता की घोषणा करते हैं।

यह कथित वैश्विक विरोध उत्तर-दक्षिण संघर्ष की याद दिलाता है, जिसका उपयोग 20वीं सदी में औद्योगिकीकृत और विकासशील देशों के बीच संबंधों का वर्णन करने के लिए किया जाता था। असमानता का वर्णन करने के अलावा, ध्यान हमेशा इन शर्तों और परिस्थितियों के लिए जवाबदेही पर रहता था, जिसे अक्सर औद्योगिकीकृत देशों के कारण माना जाता था।

अगर आज यह केवल वैश्विक धन के वितरण का सवाल होता, तो "ग्लोबल नॉर्थ" (वैश्विक उत्तर) की बात करना अधिक उचित होता, हालांकि यह शब्द भी केवल सीमित रूप से ही उपयुक्त होता। हालांकि, यह सामान्य बोलचाल में मौजूद नहीं है, और न ही "ग्लोबल ईस्ट" (वैश्विक पूर्व) मौजूद है, जो समाजवादी या साम्यवादी-उन्मुख राज्यों के लिए एक सामूहिक शब्द के रूप में काम कर सकता था। वास्तव में, यह न तो केवल धन के बारे में है और न ही शीत युद्ध के युग की वैचारिक अवशेषों के बारे में है। अंततः, "ग्लोबल साउथ" एक अजीब शब्द है जिसका उद्देश्य वाक्पटुता से राक्षसीकृत पश्चिम के प्रतिलोम के रूप में काम करना है और इसलिए यह यथासंभव अस्पष्ट और अस्पन्न है: यह उन तानाशाही राज्यों के धुरी को संदर्भित करता है जो, यद्यपि संरचना में किसी भी तरह से एकरूप नहीं हैं, फिर भी पश्चिम से अपने मतभेद की रक्षा करते हैं और अक्सर खुद को एक बेहतर विकल्प के रूप में प्रस्तुत करने की कोशिश करते हैं।<sup>6</sup>

### *भूगोल और इतिहास*

आज के पश्चिम के राजनीतिकरण से बहुत दूर, इसकी वैचारिक उत्पत्ति मुख्य रूप से यूरोकेंद्रिक मानचित्रण में निहित है, जिसने पश्चिम और पूर्व पर विमर्श को भी आकार दिया।

<sup>5</sup> आलोचनात्मक रूप से देखा जाए तो, यह शब्द एक सौम्य अभिव्यक्ति है जो तानाशाही पालन-पोषण से जुड़ी धारणाओं को जगाता है, लेकिन फिर भी इसे बच्चों के प्रति एक निश्चित स्नेह और सम्मान से भी दर्शाया जा सकता है। व्यक्ति की गरिमा और अधिकारों को कुचलने वाली तानाशाही के लिए "तानाशाही" शब्द का उपयोग व्यापक राजनीतिक श्रद्धा के कारण है, जो विषय-वस्तु के लिहाज से स्पष्ट है।

<sup>6</sup> केंद्रीय राजनीतिक पद भी प्रतिस्पर्धा के अधीन हैं। उदाहरण के लिए, अमेरिकी राष्ट्रपति बाइडेन द्वारा 2021 में खोले गए "लोकतंत्र के लिए शिखर सम्मेलन" के जवाब में चीनी सरकार ने "कारगर लोकतंत्र" शीर्षक से एक दस्तावेज़ पेश किया।

पूर्व – उगते सूरज की भूमि – की तुलना पश्चिम से की जाती है, जहाँ सूरज फिर से डूबता है<sup>7</sup> । पश्चिम अटलांटिक महासागर पर समाप्त होता है या – नई दुनिया की खोज के बाद – संयुक्त राज्य अमेरिका में, यह एक राय का विषय हो सकता है, ठीक वैसे ही जैसे यह कि पूर्व अरब प्रायद्वीप पर स्थित है या दूर के जापान में। अंततः, पृथ्वी पर प्रत्येक बिंदु के अपने व्यक्तिगत और इसलिए सापेक्ष संदर्भ बिंदु होते हैं, इसलिए इस संदर्भ में पश्चिम की बात करना ऐतिहासिक निहितार्थ रखता है।

हाल के इतिहास के दौरान, जो कभी एक भौगोलिक विरोधाभास था, वह अब एक वैचारिक विरोध बन गया है जिसने अब भू-राजनीतिक महत्व ग्रहण कर लिया है। हालांकि, इसके कारण और रुझान इतने विविध और विरोधाभासी हैं कि मूल प्रतिद्वंद्विता लंबे समय से एक ऐसे चरण में प्रवेश कर चुकी है जो विशिष्ट क्षेत्रों या धर्मों से परे है।

यहाँ तक कि पश्चिम के धर्मों और पूर्व के धर्मों के बीच अक्सर उद्धृत किया जाने वाला विरोधाभास भी, जब विस्तार से जांचा जाता है, तो कहीं अधिक सूक्ष्म है।<sup>8</sup>

एक वैज्ञानिक पश्चिम और एक गैर-प्रगतिशील पूर्व के बीच का अंतर भी इसी तरह सीमित है। क्षेत्र और सांस्कृतिक घेरे के आधार पर, यह विरोधाभास वास्तव में दिखाई देता था और है, अक्सर काफी तीव्रता के साथ। हालांकि, यह अन्य महाद्वीपों और समाजों पर भी लागू होता है। ऐतिहासिक रूप से, कई आविष्कार पूर्व में हुए, और दार्शनिक लेखन अरबों द्वारा जीते गए स्पेन के माध्यम से यूरोप पहुँचे, जिसने 16वीं शताब्दी के बाद से उभरते विज्ञानों में नेतृत्व किया।

इस संदर्भ में, जर्मन समाजशास्त्री मैक्स वेबर ने पूर्व और पश्चिम की आर्थिक प्रणालियों के बीच अंतर किया, और बाद वाले को तर्कसंगतता की उच्च डिग्री का श्रेय दिया। व्यक्तिगत संबंधों के बजाय, ठोस मूल्य गणनाओं ने बाजार की गतिविधि को निर्देशित किया - और इस प्रकार उत्पादन की दक्षता में वृद्धि हुई। 20वीं सदी में, पश्चिमी औद्योगिकीकृत राष्ट्रों की सफलता ने कई देशों की रुचि जगाई जो इस दिशा में आधुनिकीकरण भी करना चाहते थे, यानी अपनी क्षमता का विकास करना<sup>9</sup> । दूसरी ओर, पूर्व (और उससे परे) की प्रतीत होने वाली दूर की संस्कृतियों के प्रति आकर्षण की यूरोप में एक लंबी परंपरा है।

सभी विरोधी प्रवृत्तियों और विकासों के बावजूद, एक बात स्पष्ट है: आज की टकराव का मूल विभिन्न धार्मिक परंपराओं, वास्तुकला, भाषाओं या रीति-रिवाजों में नहीं है। वे कुछ विरोधाभासों के साथ हो सकते हैं और उन्हें दर्शा सकते हैं, लेकिन जड़ें कहीं अधिक गहरी

<sup>7</sup> प्राचीन ग्रीक *ἑσπερος* / *हेस्पेरॉस* (शाम) और लैटिन *वेस्पेर* (शाम) इंडो-यूरोपीय मूल \*वेस- (शाम/रात) से व्युत्पन्न हैं।

<sup>8</sup> निश्चित रूप से, ईसाई-एकल-ईश्वरवादी पश्चिम की तुलना सामान्य रूप से मुख्य रूप से हिंदू और बौद्ध पूर्व से की जा सकती है - इतिहास की एक निश्चित अवधि के लिए और भौगोलिक सीमाओं के भीतर। हालांकि, प्रतिगामी प्रवृत्तियों को नजरअंदाज किया जाना चाहिए, उदाहरण के लिए, प्राचीन मिस्र, फारस में एकल-ईश्वरवादी धाराओं और पूर्व के धर्मों के साथ-साथ पश्चिमी दुनिया में सर्व-ईश्वरवादी धाराओं को भी।

<sup>9</sup> इस संबंध में, "विकासशील देश" शब्द में शुरू में भविष्य के लिए एक आशा निहित होती है; विकास का लक्ष्य स्वाभाविक रूप से आर्थिक और राजनीतिक-दार्शनिक लक्ष्यों को संदर्भित करता है।

हैं और वे बहुत पहले ही भूगोल से अलग हो चुकी हैं। यह मानवता के अस्तित्व संबंधी प्रश्नों और दर्शन द्वारा दिए गए उत्तरों के बारे में है।

### दर्शन और राजनीति

जब हम आज प्राचीन ग्रीस में दर्शन का पालना खोजते हैं, तो हम यह जानते हुए ऐसा करते हैं कि कई संस्कृतियों में विभिन्न विचार और अवधारणाएं उत्पन्न हुईं, जिन पर शायद चर्चा हुई, लेकिन जिन्हें कभी लिखा नहीं गया। ये विकास तब ही ऐतिहासिक रूप से मूर्त होते हैं जब विचार के मार्ग बिना किसी निशान के समाप्त नहीं होते, बल्कि समाज में अपना रास्ता खोज लेते हैं और आगे बढ़ाए जाते हैं।<sup>10</sup> इस संबंध में, यूनानी दार्शनिकों ने एक ऐतिहासिक सफलता हासिल की। जिस तरह से उन्होंने दुनिया और मानवता की स्थिति के बीच संबंधों के बारे में सोचा, उसने उन्हें इतिहास की किताबों में हमेशा के लिए एक स्थान दिलाया है। यहीं पर प्राकृतिक विज्ञान और मानविकी अपनी ऐतिहासिक शुरुआत पाते हैं, यहीं पर वैश्विक पश्चिम की दार्शनिक नींव मिलती है, और यहीं पर इसके नाम की उत्पत्ति भी पाई जा सकती है।

ग्रीक दर्शन तब फल-फूल रहा था जब भूमध्यसागरीय क्षेत्र में सांस्कृतिक आदान-प्रदान और वस्तुओं के जीवंत व्यापार ने एक ऐसा माहौल तैयार किया था जिसमें अस्तित्व संबंधी प्रश्नों पर स्वतंत्र विमर्श हो सकता था। होमर द्वारा बताई गई कथाएँ अतीत में कहीं दूर थीं, और साहसी विचारक पुराने प्रश्नों के नए उत्तर खोज रहे थे।

इस नए रास्ते पर पहला कदम प्रकृति और उसकी प्रक्रियाओं की व्याख्या करना है। आदिम पदार्थों और तत्वों के बारे में पहले सिद्धांत उभरते हैं, लेकिन तकनीकी उपकरणों की कमी के कारण उनका परीक्षण नहीं किया जा सकता है। हालाँकि, अंत में, केवल अटकलों से कहीं ज़्यादा कुछ बचता है: मौलिक संभावनाएँ - परमाणु, तत्व, आदिम सिद्धांत - आधुनिक भौतिकी से ढाई सहस्राब्दी पहले, इस युग में ही पहले से ही formulate की जा रही थीं।

ग्रीक दर्शन का दूसरा स्तंभ मानव की प्रकृति से संबंधित है, जो एक व्यक्ति के रूप में और समाज में उसकी भूमिका दोनों को प्रभावित करती है। यह ज्ञान, सही ढंग से जीने, और समुदाय में सह-अस्तित्व के मौलिक प्रश्नों को संबोधित करता है। इसलिए, सबसे व्यापक अर्थ में, राजनीति<sup>11</sup> और नैतिकता के प्रश्न ही इस विमर्श को निर्धारित करते हैं। यहाँ भी, ऐसे मॉडल विकसित किए गए हैं जो आज के आधुनिक सिद्धांतों का आधार बनाते हैं। कुल

<sup>10</sup> दार्शनिक अवधारणाओं की परंपराएँ - एक-दूसरे से स्वतंत्र रूप से - कई उन्नत सभ्यताओं में पाई जा सकती हैं। दार्शनिक कार्ल यास्पर ने लगभग 800 से 200 ईसा पूर्व की अवधि को "अक्षय युग" भी कहा है, क्योंकि केंद्रीय दार्शनिक नींव "इन कुछ शताब्दियों के दौरान चीन, भारत और पश्चिम में लगभग एक साथ उभरीं, बिना एक-दूसरे के बारे में जाने।" (*द ओरिजिन एंड गोल ऑफ़ हिस्ट्री*, 1949, 20)।

<sup>11</sup> यहाँ *राजनीति* को अस्तु के अनुसार एक व्यापक अर्थ में समझा गया है, जिन्होंने मनुष्यों को *ज़ून पोलिटिकॉन* (सामाजिक प्राणी) बताया है।

मिलाकर, इस प्रकार ग्रीक दर्शन पश्चिमी संस्कृति के लिए केंद्रीय बौद्धिक आधार प्रदान करता है।<sup>12</sup>

एक और नई शुरुआत ने खोज के युग की घोषणा की। मध्य युग के अंत में, बढ़ते व्यापार – जैसा कि प्राचीन ग्रीस में एक बार हुआ था – ने शहरों के विकास को गति दी, जिनकी संपत्ति ने विज्ञान और संस्कृति को फलने-फूलने का अवसर प्रदान किया। पूरे यूरोप में विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई।

प्राकृतिक विज्ञानों के उदय के साथ, प्रकृति के नियमों को समझना, अज्ञात क्षेत्रों की खोज करना और दुनिया भर में नए मार्ग खोजना दिन-ब-दिन संभव होता गया। अनुसंधान की शुरुआत ने शीघ्र ही प्रौद्योगिकी, चिकित्सा और दैनिक उपयोग की वस्तुओं के उत्पादन के सभी क्षेत्रों में अभूतपूर्व प्रगति को संभव बनाया – एक ऐसा विकास जो आज तक जारी है। वैज्ञानिक प्रगति और इसके परिणामों ने तब से लोगों के जीवन को आकार दिया है और पश्चिमी जीवनशैली की एक पहचान बन गए हैं।

हालांकि, अनुसंधान और विज्ञान एक सार्वभौमिक घटना है। यद्यपि उन्होंने यूरोपीय-पश्चिमी संस्कृति में अपनी सफलता हासिल की है, यह अनुमान लगाया जा सकता है कि सिद्धांत और व्यवहार में दुनिया के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण एक दिन दुनिया भर में एक सामान्य बात बन जाएगा।

हालांकि, वैज्ञानिक प्रगति और उसके परिणाम "पश्चिमी पहचान" का केवल एक हिस्सा हैं। पश्चिम के लिए यह समझ मौलिक है कि मनुष्य व्यक्तिगत कर्ता हैं, जिन्हें अपने निजी क्षेत्र में स्वतंत्रता के अटूट अधिकार और राजनीतिक व सामाजिक निर्णय-प्रक्रिया में भाग लेने का अधिकार प्राप्त है। जहाँ एक ओर राज्य की शक्तियाँ मूलतः सार्वभौम - यानी जनता - की इच्छा से प्राप्त होती हैं, वहीं दूसरी ओर व्यक्ति की व्यक्तिगत संप्रभुता अटूट मानवीय गरिमा से प्राप्त होती है।

मानव स्वभाव पर शुरुआती चिंतन से लेकर, यूनानी दर्शन और प्रबोधन काल से होते हुए, आज की "पश्चिमी" समझ तक, यह कई विरोधाभासों और असफलताओं से भरी एक लंबी यात्रा रही है। और फिर भी, अंततः, यह मानवता की छवि ही है जो एक स्वतंत्रता-उन्मुख और लोकतांत्रिक समाज का आधार बनाती है। ऐसे समाज में, प्रत्येक व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रताओं को सुरक्षित करना और उचित प्रक्रियाओं के माध्यम से सभी राजनीति की लोकतांत्रिक उत्पत्ति सुनिश्चित करना राज्य का कार्य है। क्योंकि व्यवहार में कानून और नियम आवश्यक हैं, जैसे कि अदालतें और प्राधिकरण, एक "पश्चिमी" राज्य केवल एक सवैधानिक राज्य के रूप में ही मौजूद हो सकता है, न कि एक ढीले-ढाले और गैर-बाध्यकारी समुदाय के रूप में। व्यक्तियों को यह भरोसा होना चाहिए कि उनकी गरिमा और अधिकारों की हर समय रक्षा की जाएगी।

<sup>12</sup> इसके अतिरिक्त रोमन कानून के सिद्धांत और यूरोप में यहूदी-ईसाई धर्म का प्रभाव भी शामिल है। इन तीन कारकों को यूरोप के संरचनात्मक स्तंभ माना जाता है। ग्रीको-रोमन प्राचीनता के अंत को अक्सर 529 में एथेंस में प्लेटो की अकादमी के बंद होने से जोड़ा जाता है, जबकि उसी समय मोंटेकासिनो पर पहली बेनेडिक्टिन मठ की स्थापना हुई थी – जो ईसाई-प्रभावित यूरोपीय मध्य युग के लिए एक मील का पत्थर था।

## संप्रभुता और संप्रभुताएँ: परम औचित्य

पश्चिम, मानव गरिमा और व्यक्तिगत तथा राजनीतिक संप्रभुता की रूपरेखाबद्ध अवधारणा पर एक दार्शनिक अवधारणा के रूप में, बल्कि एक राजनीतिक, यहाँ तक कि भू-राजनीतिक प्रतिमान के रूप में भी निर्भर करता है<sup>13</sup>। मानवता की अवधारणा - और उसका परम औचित्य - यह निर्धारित करती है कि कौन सा राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक क्रम मानव स्वभाव के लिए उपयुक्त है। हम इस बात के उतने ही निश्चित हो सकते हैं कि यह क्रम समय के साथ प्रचलित रहेगा, जितना कि हम इस बात के निश्चित हो सकते हैं कि हमारे ब्रह्मांड की प्रकृति के अनुरूप एक वैज्ञानिक विश्वदृष्टि प्रचलित होगी। सबसे लोकप्रिय आपत्ति प्राकृतिक विज्ञान के क्षेत्र से आती है और इसका सारांश इस प्रकार है: चूँकि ब्रह्मांड में सभी प्रक्रियाएँ भौतिक नियमों के अनुसार होती हैं, इसलिए यह सभी पिंडों, जीवित प्राणियों और मनुष्यों पर भी लागू होता है। हृदय की धड़कन से लेकर मस्तिष्क की सबसे सूक्ष्म प्रक्रियाओं तक, सब कुछ स्वभाव से पूरी तरह से भौतिक है और कारण और प्रभाव की एक लंबी और जटिल श्रृंखला का हिस्सा है, जो जैविक क्षेत्र में एक घड़ी की तरह काम करने वाली यंत्रणा के समान है। मानवों के पास न तो प्रकृति के नियमों से परे कोई सूक्ष्म आत्मा है और न ही स्वतंत्र इच्छा, और न ही किसी भी प्रकार की गरिमा का पता लगाया जा सकता है। जो वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए सुलभ नहीं है, वह वास्तविक नहीं है।<sup>14</sup>

हालांकि विज्ञान की बढ़ती सफलताओं के साथ इस "प्राकृतिकवादी" विश्वदृष्टि के अनुयायी लगातार बढ़ रहे हैं, इसमें एक मौलिक खामी है। भले ही यह बार-बार एक भौतिक सिद्धांत, तथाकथित रूप से कई वर्षों के शोध का निष्कर्ष होने का आभास देता हो, इसका विपरीत सच है। एक भौतिक विश्वदृष्टि के दायरे का प्रश्न अब कोई भौतिक प्रश्न नहीं, बल्कि एक दार्शनिक प्रश्न है, और इस प्रकार यह एक पूरी तरह से अलग स्तर पर मौजूद है। दार्शनिक चर्चा में, जिसका यहाँ केवल संकेत ही दिया जा सकता है<sup>15</sup>, जब स्वतंत्र इच्छा और मानवीय चेतना को तंत्रिका प्रक्रियाओं तक सीमित करने या नैतिक प्रश्नों का अनुवाद केवल मनोवैज्ञानिक अवस्थाओं में करने का प्रयास किया जाता है, तो काफी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। हालांकि, मानवता का एक प्राकृतिक दृष्टिकोण नैतिक और सौंदर्य संबंधी प्रश्नों को

<sup>13</sup> व्याख्या और समझ के लिए एक व्यापक ढांचे के रूप में प्रतिमान की अवधारणा इस मामले में विशेष रूप से उचित प्रतीत होती है क्योंकि, वैज्ञानिक-सैद्धांतिक स्तर (जिससे इसका मूल रूप से उद्भव हुआ है - तुलना करें थॉमस कुह, 1962) के अलावा, यह अस्तित्वगत, व्यावहारिक और (भू)राजनीतिक नींव को भी छूती है।

<sup>14</sup> डेविड लुईस: (1983, 361): "दुनिया वैसे ही है जैसी भौतिकी कहती है, और कहने के लिए इससे ज़्यादा कुछ नहीं है।" इस स्थिति को कई नामों से जाना जाता है, जैसे कि भौतिकवाद, सकारात्मकवाद, या अनुभववाद, लेकिन मूल रूप से यह हमेशा एक ही धारणाओं से आगे बढ़ती है।

<sup>15</sup> कुछ अतिरिक्त विचार इस निबंध के एक अलग प्रस्तावना में पाए जा सकते हैं।

अर्थहीन खाली अवधारणाओं के रूप में खारिज करता है<sup>16</sup>, और न्याय की मानवीय खोज तथा अर्थ की तलाश को मस्तिष्क की जटिल भ्रांतियों और परछाइयों के रूप में देखता है, जो स्वयं एक अत्यंत जटिल यंत्र है<sup>17</sup>, जो अंततः जैव रासायनिक कारणों से निर्धारित होता है, और जो जीव को नियंत्रित करता है। इसलिए स्वायत्त प्राणियों के रूप में मनुष्यों की आत्म-छवि अनिवार्य रूप से यह मानती है कि भौतिक प्रक्रियाओं के अलावा, एक परम वास्तविकता है जो मानवीय आत्मा, गरिमा और स्वतंत्रता के लिए एक आधार प्रदान करती है। संयोग से, यह दुनिया की भौतिक संरचना पर भी लागू होता है, जिसके कारण फिर से भौतिक नहीं हो सकते। अंततः, भौतिक दुनिया की उत्पत्ति कोई भौतिक सिद्धांत नहीं है, बल्कि एक मौलिक दार्शनिक प्रश्न है।

सारांश में, यह कहा जा सकता है कि मानवता के महान अस्तित्व संबंधी प्रश्न, जैसा कि कांट ने उन्हें<sup>18</sup> रूप दिया था, भौतिकी की व्याख्या के दायरे से परे हैं।

अंत में, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि प्राकृतिकतावादी प्रतिमान अत्यधिक तर्क-विरोधी है क्योंकि सभी मनुष्य, यहाँ तक कि इसके अनुयायी और समर्थक भी, दैनिक जीवन में इस तरह से कार्य करते हैं जैसे कि वे अपनी स्वतंत्र इच्छा से नैतिक निर्णय ले रहे हों या विज्ञान का संचालन कर रहे हों और दुनिया से रहस्य निकाल रहे हों। जितनी अधिक जटिल विमर्श बनते जाते हैं, उतना ही अधिक हास्यास्पद लगता है कि केवल तंत्रिका संबंधी कार्यक्रमों ने ही विमर्श के पाठ्यक्रम और अंतःक्रियाओं को निर्धारित किया है।

इस बिंदु पर विशिष्ट दार्शनिक या धार्मिक अवधारणाओं पर चर्चा करने के बिना भी, यह कहा जा सकता है कि मानवीय गरिमा के निर्धारण (और उससे उत्पन्न होने वाले अधिकारों और कर्तव्यों) के लिए दुनिया की एक पारलौकिक समझ की आवश्यकता होती है जो आगे के अस्तित्वगत प्रश्नों के लिए भी जगह छोड़ती है। "मानवता पर पश्चिमी दृष्टिकोण" - लेकिन केवल यही नहीं<sup>19</sup> - अनिवार्य रूप से मानवता और इस प्रकार समग्र वास्तविकता के इस दृष्टिकोण को पहले से ही मानता है।

<sup>16</sup> "जहाँ सकारात्मकतावादी तर्क अन्य सभी को दरकिनार कर क्षेत्र पर हावी होता है... तब नैतिकता और कानून के लिए ज्ञान के शास्त्रीय स्रोत बहिष्कृत हो जाते हैं" - बेनेडिक्ट सोलहवें ने 22 सितंबर, 2011 को जर्मन बुंडेस्टाग को अपने संबोधन में।

<sup>17</sup> यहाँ तक कि एक संभावित संयोग भी मस्तिष्क की कार्यप्रणाली के अर्ध-प्रोग्रामित क्रम को मौलिक रूप से नहीं बदलेगा, बल्कि कुछ अनिश्चितताओं के साथ इसे केवल "ढीला कर देगा"।

<sup>18</sup> "दर्शन का क्षेत्र [...] निम्नलिखित प्रश्नों तक सीमित किया जा सकता है: 1) मैं क्या जान सकता हूँ? 2) मुझे क्या करना चाहिए? 3) मैं किस बात की आशा कर सकता हूँ? 4) मनुष्य क्या है?" (क्रिटिक ऑफ़ प्योर रीजन, बी833,1787) - 1897/98 में, फ्रांसीसी चित्रकार पॉल गोगॉ ने इसी तरह के मौलिक प्रश्नों के साथ एक पेंटिंग का नाम रखा: "हम कहाँ से आते हैं? हम कौन हैं? हम कहाँ जा रहे हैं?"

<sup>19</sup> विचारधाराएँ और विज्ञान जो नई चीजों के सक्रिय ज्ञान, एकजुटता या मूल्यों, नैतिकता और सौंदर्यशास्त्र की बात करते हैं, वे भी पारलौकिक संदर्भों की ओर इशारा करते हैं। उनके लिए, और साथ ही पश्चिमी जीवनशैली के कई प्रतिनिधियों के लिए, यह संबंध अधिकतर अज्ञात है या अप्रासंगिक लगता है। वास्तव में, अन्यथा व्यक्ति घटनाओं की एक पूर्वनिर्धारित श्रृंखला में खुद को खो देगा और तथाकथित आत्मा मनोवैज्ञानिक भ्रमों की एक स्थायी धारा में बह जाएगी। यह विज्ञान के दावों को हास्यास्पद बना देगा और मनुष्यों को हास्यास्पद कठपुतलियों तक घटा देगा।

अंततः, यह कई उपलब्ध विकल्पों में से स्वतंत्र रूप से चयन करने के अर्थ में मनमाने विकल्प का मामला नहीं है। वास्तव में, केवल एक ही वास्तविकता उपलब्ध है, और यह मानवीय नियंत्रण से परे है। इसकी प्रकृति चाहे जो भी हो - और इसके बारे में बहस चाहे जितनी भी तीव्र क्यों न हो - यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वास्तविकता को जैसी है वैसी स्वीकार करने के अलावा कोई दूसरा विकल्प नहीं है: वास्तविकता अंतिम वैधता है, यह बाकी सब कुछ से ऊपर है: निरपेक्ष की संप्रभुता बनी रहती है।

### *कई व्यवधान: विकास और क्रांति के बीच*

पहली नज़र में, ऊपर रेखांकित पश्चिमी अवधारणा समाज का एक अस्पष्ट रूप से निर्मित मॉडल प्रतीत होती है जो वास्तविकता की तुलना में राजनीतिक और धार्मिक यूटोपिया के क्षेत्र से अधिक उत्पन्न हुई है। इसलिए, इस आलोचना का मूल सार यह है: यदि गरिमा, अधिकारों और संप्रभुता वाले मानवीय अस्तित्व की रूपरेखा *वास्तव में - वास्तविकता में* - उनके स्वभाव के अनुरूप है, और यदि परिणामी स्वतंत्र सामाजिक व्यवस्था इसलिए उपयुक्त अवधारणा है, तो यह इतिहास भर में अपने आप क्यों नहीं टिक पाई, बल्कि इसके बजाय अक्सर अस्तित्व के लिए संघर्ष करती रही है?

पहली नज़र में, यह आपत्ति उचित लगती है; वास्तव में, इतिहास और वर्तमान को देखने पर यह स्पष्ट लगता है। जहाँ विज्ञान का रास्ता अपेक्षाकृत सीधा रहा है, जो केवल कभी-कभार धर्म और राजनीति से प्रभावित हुआ है, वहीं समाज के एक व्यवहार्य रूप की खोज परिवर्तनशील और कभी-कभी दिशाहीन प्रतीत होती है। यह रास्ता इतना कठिन क्यों है? इसका उत्तर विभिन्न अंतरालों, असफलताओं, निरंतरताओं और विपरीत प्रवृत्तियों में निहित है, जिन्हें मोटे तौर पर व्यवधानों के रूप में संक्षेपित किया जा सकता है। इनके विभिन्न स्थानिक-कालिक, सामाजिक और सांस्कृतिक आयाम होते हैं और ये एक-दूसरे को सुदृढ़ कर सकते हैं।

- अस्थायी व्यवधान: यद्यपि उदार संवैधानिक राज्य की शुरुआत सभी संस्कृतियों में देखी जा सकती है, फिर भी प्राचीन यूनान जैसे शुरुआती प्रयासों के बावजूद, ऐसे राज्य का विकास एक अपेक्षाकृत आधुनिक विकास है जिसे आबादी के बीच व्यापक समर्थन नहीं मिला। 19वीं और 20वीं सदी तक, जब नागरिकों ने अपना सशक्तिकरण और संप्रभुता खोजी, तब जाकर मानवाधिकारों और लोकतंत्र के विचार को गति मिली - ज्ञात बाधाओं और असफलताओं के साथ।
- स्थानिक व्यवधान: जहाँ एक ओर पश्चिमी मूल्यों ने दुनिया के एक हिस्से में खुद को स्थापित कर लिया है, वहीं दूसरी ओर पारंपरिक प्रणालियों ने अन्यत्र अपनी स्थिति बनाए रखी है। यह अपने ही संप्रभुता की जागरूकता की कमी के कारण हो सकता है, जिससे व्यक्ति अपनी ही परिपक्वता के बारे में प्रबोधन की कमी की

बात कर सकता है। साथ ही, इस प्राकृतिक विकास को राजनीतिक या धार्मिक ताकतें धीमा कर रही हैं।

- कालानुक्रमिक व्यवधान: यद्यपि अपनी संप्रभुता की जागरूकता मानवीय अस्तित्व का अभिन्न अंग है, इतिहास में बार-बार ऐसी पुनर्स्थापनावादी और प्रतिक्रियावादी आंदोलनों का उदय हुआ है जो उन मूल्यों पर प्रश्न उठाती हैं जिन्हें कभी इतनी मेहनत से हासिल किया गया था। भले ही पश्चिमी मूल्यों – और उनके साथ आने वाली समृद्धि – ने वैश्विक आकर्षण विकसित कर लिया है, ऐतिहासिक विकास किसी भी तरह से स्वचालित नहीं है। अब तक की सबसे बड़ी बाधा यूरोप में फासीवाद का दौर था, विशेष रूप से जर्मनी में राष्ट्रीय समाजवाद।<sup>20</sup>
- व्यक्तिगत व्यवधान: उदार लोकतंत्रों के प्रति लगाव विभिन्न स्तरों पर कम हो सकता है और आम नागरिकों और राजनीतिक नेताओं दोनों के बीच इसके विपरीत में बदल सकता है। सामाजिक, आर्थिक या राजनीतिक विकास से असंतोष भी मानवीय सहअस्तित्व के सबसे बुनियादी स्तंभों को त्यागने का कारण बन सकता है, जिसके साथ हमेशा एक सामान्य सामाजिक गिरावट का खतरा जुड़ा रहता है।
- सांस्कृतिक व्यवधान: स्वयं को स्वतंत्र और लोकतांत्रिक मानने वाले समाजों पर एक नज़र डालने से पता चलता है कि राष्ट्रीय सीमाओं के भीतर भी इस बात पर अलग-अलग विचार हैं कि राज्य की नींव कौन से मौलिक मूल्य बनाने चाहिए। यह व्यक्तिगत कानूनों और राजनीतिक दिशाओं का मामला नहीं है, जिन्हें बाद में लोकतांत्रिक प्रक्रिया में तय किया जाना है, बल्कि यह नैतिकता, राजनीति, धर्म और संस्कृति के मौलिक प्रश्नों का मामला है। देशों के बीच भी, लोकतंत्र और स्वतंत्रता की समझ में अधिक या कम महत्वपूर्ण अंतर हैं।<sup>21</sup>
- रणनीतिक व्यवधान: विस्तारवादी और तानाशाही ताकतों के खिलाफ स्वतंत्र दुनिया की रक्षा करना और अपनी अस्तित्व की रक्षा करना – सैन्य अड्डे, कच्चा माल, सहयोगी – बार-बार उन राज्यों के साथ रणनीतिक गठबंधन करने के लिए

<sup>20</sup> समाजशास्त्री युरगेन हाबरमास युद्धोत्तर जर्मनी में शुरू हुए लोकतांत्रिक पुनर्संरचना का वर्णन इस प्रकार करते हैं: "एक आर्थिक और राजनीतिक, और बाद में कुछ हद तक सांस्कृतिक, प्रक्रिया जो [केवल] तब [अपरिवर्तनीय] बन जाएगी जब सांस्कृतिक पश्चिमीकरण पूरी आबादी की मानसिकता में समा जाएगा" (जुलाई 1989 में बारबरा फ्राइटाग के साथ एक साक्षात्कार में)।

<sup>21</sup> बेशक, किसी समाज की व्यक्तिगत गरिमा और स्वतंत्रता की सच्ची समझ औसत आय वाले, जमीन से जुड़े मध्यम आय वर्ग के वयस्कों में परिलक्षित नहीं होती है। बल्कि, वास्तविक मूल्य युवाओं, वरिष्ठ नागरिकों और सामाजिक रूप से वंचित समूहों की स्थिति में, साथ ही जेलों, सेना और अन्य संस्थानों और प्राधिकरणों की परिस्थितियों में परिलक्षित होते हैं जो व्यक्तिगत संप्रभुता को प्रभावित कर सकते हैं।

प्रेरित करता है जिनका आंतरिक संविधान अपने स्वयं के मूल्यों का खंडन करता है। नैतिक दुविधा स्पष्ट है और यह नागरिकों और राजनेताओं दोनों के बीच खतरनाक उदासीनता पैदा कर सकती है।<sup>22</sup> यह समानता और वैध स्थायी सह-अस्तित्व की छाप पैदा कर सकता है।

यदि कोई कानून के शासन पर आधारित उदार और लोकतांत्रिक सिद्धांतों की खोज और साकार को संस्कृति से संस्कृति तक अलग-अलग पूर्व शर्तों के साथ एक क्रमिक विकास के रूप में समझता है, तो उसे शुरुआत से ही ऐसे मतभेदों की उम्मीद करनी चाहिए। यद्यपि इतिहास में तानाशाही से लोकतंत्र तक कई क्रांतिकारी आंदोलनों हुई हैं, फिर भी ऐतिहासिक प्रक्रिया स्वभाव से विकासवादी है।

### *भू-राजनीति और दृष्टिकोण*

यह मानते हुए कि ऊपर उल्लिखित मानवता की अवधारणा, जो परम सत्य के प्रति खुले विश्वदृष्टिकोण के ढांचे के भीतर है, वास्तव में वास्तविकता से मेल खाती है, तो यह माना जा सकता है कि, संभावित असफलताओं के बावजूद और दीर्घकाल में, एक उदार और लोकतांत्रिक राज्य का विचार पूरे इतिहास में हावी रहेगा। यह अवलोकन 20वीं सदी में ही किया जा सकता था, जब यह स्पष्ट हो गया कि व्यक्तिगत गरिमा और स्वतंत्रता केवल एक दार्शनिक अवधारणा से उत्पन्न नहीं हुई थी, बल्कि यह दुनिया के सभी हिस्सों में कई लोगों की चेतना से मेल खाती थी।<sup>23</sup> वास्तव में, 1990 के दशक में कई लोकतांत्रिक प्रक्रियाएं और शांति पहल शुरू की गईं, जिससे कुछ शोधकर्ताओं ने "वैश्विक घरेलू नीति"<sup>24</sup> के उदय की भविष्यवाणी की, जो धीरे-धीरे अंतरराष्ट्रीय संघर्षों को हल कर देगी।

हालाँकि भू-राजनीतिक दृष्टिकोण से, राज्यों के एक समुदाय की वह छवि—जो अपनी गति और अपनी शर्तों पर एक लोकतांत्रिक समुदाय की ओर बढ़ रहा था—अब एक विपरीत वास्तविकता से ओझल हो गई है। क्योंकि "स्वतंत्र दुनिया"<sup>25</sup> के राज्यों के साथ-साथ, कई तानाशाही शासन भी हैं और रहे हैं, जिनका प्राथमिक लक्ष्य सत्ता बनाए रखना या किसी राजनीतिक या धार्मिक विचारधारा को लागू करना है और जो पश्चिमी दुनिया का विरोध करते हैं, यदि आवश्यक हो तो एकजुट होकर। वे गुप्त रूप से संदेह कर सकते हैं कि जल्दी या बाद में स्वतंत्रता का कोई रास्ता होगा, वास्तव में होना ही चाहिए, लेकिन वे इस अंतर्दृष्टि और

<sup>22</sup> रणनीतिक सिद्धांत "मेरे दुश्मन का दुश्मन मेरा दोस्त है", जो सहस्राब्दियों से जाना जाता है, अस्तित्वगत आपात स्थितियों में रणनीतिक रूप से उचित हो सकता है, लेकिन यह (शक्ति) राजनीतिक निर्णयों की नैतिक नींव का स्थान नहीं ले सकता।

<sup>23</sup> दार्शनिक फ्रांसिस फुकुयामा ने 1989 में ही "इतिहास के अंत" की बात कही थी, जब दुनिया भर में लोगों ने अपने अधिकारों और संप्रभुता की मांग की और यह एक सार्वभौमिक दावा प्रतीत होने लगा।

<sup>24</sup> पादटिप्पणी 4 देखें।

<sup>25</sup> यह वैकल्पिक शब्द भी ऐतिहासिक रूप से भारत है – पूर्वी-पश्चिमी संघर्ष से।

इससे उत्पन्न होने वाले परिणामों का विरोध करते हैं। अंततः, वे एक ऐसी वास्तविकता का विरोध कर रहे हैं जिसका विरोध करना असंभव है।

### *विरोधी सिद्धांत: "दो दुनिया"*

अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक मंच पर<sup>26</sup>, तानाशाही और स्वतंत्र राज्यों के बीच एक महत्वपूर्ण संघर्ष है, जो स्वभाव में मौलिक रूप से विषम है। इसका कारण सामाजिक सह-अस्तित्व के विरोधी दृष्टिकोणों में निहित है।

लोकतांत्रिक दुनिया में, राज्य अपने नागरिकों के लिए मौजूद है। इसका एकमात्र औचित्य लोगों को गरिमा से जीने में सक्षम बनाना और जहाँ तक संभव हो, उनके संप्रभु जीवन शैली पर किसी भी तरह के अतिक्रमण को दूर करना है। एक स्वतंत्र समाज में, राज्य को अपने कार्यों का औचित्य सिद्ध करना चाहिए और यह साबित करना चाहिए कि सख्त प्रतिबंध आवश्यक हैं और उनका कोई विकल्प नहीं है। यह नागरिक नहीं है जिसे अपनी स्वतंत्रता का औचित्य सिद्ध करना चाहिए, बल्कि राज्य को अपने हस्तक्षेपों का औचित्य सिद्ध करना चाहिए।

सत्तावादी और तानाशाही राज्यों में, यह सिद्धांत उलट जाता है: राज्य और उसका राजनीतिक नेतृत्व सार्वभौम होते हैं, चाहे वह धार्मिक, राजनीतिक-वैचारिक, या व्यक्तिगत आधार पर हो। व्यक्ति, जहाँ तक इस तरह की किसी चीज़ के बारे में अभी भी बात की जा सकती है, हर मामले में इस *raison d'état* (राज्य की नीति) के अधीनस्थ होता है। बेशक, इनमें क्रमिक अंतर हैं: "नरम" तानाशाही आर्थिक और सामाजिक गतिविधियों को अछूता छोड़ सकती हैं और केवल राजनीतिक आलोचना का ही उत्पीड़न करती हैं, जबकि तानाशाही शासन लोगों के विचारों और उनके अस्तित्व को ही मनमाने ढंग से नियंत्रित करना चाहते हैं। हालांकि, अंत में, व्यक्ति शासक तंत्र के खिलाफ शक्तिहीन होता है; वह न तो अधिकारों का दावा कर सकता है और न ही गरिमा का, उसकी क्रिया की स्वतंत्रता उसे ऊपर से प्रदान की जाती है और इसे किसी भी समय प्रतिबंधित या रद्द किया जा सकता है। एक अस्तित्वगत जोखिम उनके पूरे जीवन के साथ रहता है और सामाजिक सह-अस्तित्व को – और कभी-कभी व्यक्तिगत व्यक्तित्वों को भी – सबसे छोटे विवरण तक विकृत कर देता है। *raison d'état* – शासन का अस्तित्व – मानव अस्तित्व के सभी क्षेत्रों पर हावी रहता है और उन्हें प्रभावित करता है।<sup>27</sup>

### *अंतर्राष्ट्रीय स्तर*

<sup>26</sup> यह रूपक शब्द एक नाटक की याद दिलाता है, लेकिन यह तब निंदनीय लगता है जब लाखों लोग अपनी जान और गरिमा खो देते हैं और अरबों लोग राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक रूप से प्रभावित होते हैं। संसाधनों का विनाश वैश्विक स्तर पर हो रहा है और अंततः यह ग्रह पर लगभग हर किसी पर अपनी छाप छोड़ता है।

<sup>27</sup> वास्तव में, ये शब्द श्रम और संहार शिविरों, यातना केंद्रों, दमन और अकल्पनीय पैमाने की अत्याचारों का उल्लेख करते हैं: वे अस्तित्व के सबसे गहरे गर्त हैं।

सत्तावादी राज्यों की यह प्राथमिकता अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी परिलक्षित होती है: सभी प्रयास शासक व्यवस्था के अस्तित्व और शक्ति को सुरक्षित करने की ओर निर्देशित होते हैं, और सभी अन्य राजनीतिक या वैचारिक उद्देश्यों को इस प्रयास के अधीन कर दिया जाता है। चूंकि सत्ता बनाए रखने की सर्वोच्चता का पहले से ही मतलब है कि मानवाधिकारों और पारिस्थितिक या सांस्कृतिक मूल्यों को आंतरिक रूप से सीमित, अनदेखा या उनका मुकाबला किया जाता है, इसलिए ये मूल्य एक तानाशाही के अंतरराष्ट्रीय संबंधों के लिए भी कोई महत्व नहीं रखते हैं - सिवाय शासन के वास्तविक या कथित खतरों के खिलाफ लड़ाई में प्रचार के रूप में।

सर्वहारा तंत्रों के लिए तत्काल खतरा उनके समकक्षों से आता है: क्योंकि वे न तो अपने नागरिकों की संप्रभुता का सम्मान करते हैं और न ही अन्य राज्यों की, इसलिए पारस्परिक संबंधों को नियंत्रित करने वाले कोई बाध्यकारी नियम नहीं होते हैं: शक्ति का सिद्धांत लागू होता है - बाहरी हिंसा का उद्देश्य हमेशा शासन के अस्तित्व को सुरक्षित करना होता है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर, जंगल का कानून लागू होता है - जीवित रहने के लिए सैन्य शक्ति की आवश्यकता होती है। अविश्वास के माहौल में, गठबंधन अक्सर अनिश्चित होते हैं और अपना अस्तित्व लगातार खतरे में रहता है।

दमनकारी शासनों के लिए एक मौलिक - आंतरिक - खतरा उनके अपने नागरिक हैं, जो उनके दमन का विरोध कर सकते हैं और अपने व्यक्तिगत और राजनीतिक अधिकारों की मांग कर सकते हैं। यद्यपि लोकतांत्रिक राज्य सिद्धांत रूप में उत्पीड़ित लोगों का समर्थन करते हैं और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर उनके अधिकारों की रक्षा करते हैं, वे आमतौर पर अपनी गतिविधियों को एकजुटता के प्रदर्शन और प्रस्तावों तक ही सीमित रखते हैं। सक्रिय सहायता, जिसमें जबरदस्त हस्तक्षेप भी शामिल होगा, केवल अत्यंत असाधारण मामलों में ही अपेक्षित की जा सकती है।

हालांकि स्वतंत्र विश्व तानाशाही द्वारा सैन्य हमलों से अपनी रक्षा के लिए गठबंधन बना सकता है, उत्पीड़ित लोगों की सहायता के लिए आने की संभावनाएं सीमित रहती हैं। लोकतांत्रिक राज्य आम तौर पर सैन्य बल या राजनीतिक दबाव के उपयोग से बचते हैं क्योंकि वे बातचीत, समझ और सद्भावना पर निर्भर करते हैं। इसके अलावा, हमेशा यह जोखिम रहता है कि विदेशी हस्तक्षेप को आबादी द्वारा संदेह की दृष्टि से देखा जाएगा, जिससे राजनीतिक निर्णय लेने वालों को अपना समर्थन वापस लेने के लिए मजबूर होना पड़ेगा। प्रत्येक नए चुनाव के साथ, यह संभावना रहती है कि राजनीतिक माहौल बदल जाएगा और यहां तक कि ऐतिहासिक गठबंधन भी समाप्त हो जाएंगे।

परिवर्तन के प्रति खुलापन और राजनीतिक नेतृत्व का संप्रभु नागरिकों की इच्छा पर निर्भर होना स्वतंत्र समाजों की केंद्रीय विशेषता है। साथ ही, यह पारदर्शिता और खुलापन तानाशाही राज्यों के धुरी के लिए एक खुली कमजोरी का प्रतिनिधित्व करता है।

इसलिए वे सभी स्तरों पर राजनीतिक प्रचार के माध्यम से जनमत और मतदान के व्यवहार को प्रभावित करने और नियंत्रित संकटों के माध्यम से संबंधित समाजों को चुनौती देने का प्रयास करते हैं। इन साधनों में जानबूझकर गलत सूचना फैलाने से लेकर बाहरी सीमाओं

पर प्रवासन दबाव पैदा करने, सैन्य उकसावे और हमलों तक शामिल हैं। इसके अलावा, तानाशाही धुरी का विरोध करने वाले व्यक्तिगत नागरिकों और संगठनों पर लगातार दबाव डाला जाता है, जिससे वे मीडिया या शारीरिक हिंसा का निशाना बन जाते हैं। अंततः, लक्ष्य सभी स्तरों पर व्यापक कार्रवाई के माध्यम से लोकतांत्रिक राज्यों को अस्थिर करना है, जिससे उन्हें वैश्विक स्वतंत्रता को संरक्षित करने और बढ़ावा देने की अपनी प्रतिबद्धता से रोका जा सके।

यहाँ तक कि राजनेताओं में भी शक्ति और प्रभाव के इन कारकों के प्रति जागरूकता काफी सीमित है। राजनीतिक स्थिति का निर्मम विश्लेषण करने की तुलना में तानाशाही राज्यों की शांतिपूर्ण सहअस्तित्व की इच्छा और उनके संभावित लोकतांत्रिक विकास में विश्वास अधिक आकर्षक लगता है।<sup>28</sup> इसके अलावा, मुक्त विश्व – वैश्विक पश्चिम – के सिद्धांतों को बार-बार गलत समझा जाता है और उन्हें कमजोर कर दिया जाता है।

## पश्चिम के स्वयंसिद्ध सत्य

धर्मनिरपेक्ष और धार्मिक विचारधाराओं के विपरीत, पश्चिम संयम की एक सीमा से परिभाषित होता है: इसमें अंतकाल संबंधी प्रतिमान, आर्थिक नियोजन परिदृश्य, और यूटोपियन सामाजिक मॉडल का अभाव है। स्वतंत्रता और गरिमा से परिपूर्ण जीवन का वादा लगभग सारहीन प्रतीत होता है। वास्तव में, यह कुछ मौलिक पहलुओं और संरचनाओं के बारे में है<sup>29</sup>। पश्चिम की स्वतंत्रता का एक अक्षीय आयाम भी है:

### 1. परम की संप्रभुता: खुला-अतिक्रांतिक आधार

वास्तविकता का यह दृष्टिकोण मानव स्वभाव और राजनीतिक तथा वैज्ञानिक गतिविधियों को समझने के लिए एक आवश्यक आधार है। केवल इसी आधार पर विभिन्न वैचारिक और

<sup>28</sup> शीत युद्ध के दौरान कथित "शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व" का संदर्भ भ्रामक है, न केवल उस समय हुए संघर्षों को देखते हुए। हालांकि महाशक्तियों के बीच परमाणु गतिरोध ने प्रत्यक्ष सैन्य टकराव को असंभव बना दिया था, वास्तव में शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व सोवियत संघ में हुए परिवर्तनों और पूर्वी यूरोप में आए उथल-पुथल के बाद ही संभव हुआ। इस प्रकार का जबरन सह-अस्तित्व इसलिए केवल अस्थायी हो सकता है, उतना ही अस्थायी जितना एक तानाशाही सरकार और उसके उत्पीड़ित नागरिकों के बीच जबरन आंतरिक सह-अस्तित्व।

<sup>29</sup> इसका तात्पर्य उस नौकरशाही से नहीं है जो एक स्वतंत्र संवैधानिक राज्य में, अपने सभी फायदे और नुकसान के साथ, पूरी तरह से कल्पनीय है, बल्कि यह मानवीय विचारधारात्मक "प्रोग्रामिंग" के त्याग की ओर है।

धार्मिक संदर्भों के साथ आगे के अस्तित्वगत पहलुओं पर चर्चा की जा सकती है। वैचारिक बाधाओं के बिना स्वतंत्र और खुली विमर्श पश्चिम का एक अनिवार्य मूल है।

## 2. व्यक्ति की संप्रभुता: अपने जीवन को आकार देने का अधिकार

मानवीय स्वभाव और गरिमा वास्तविकता की एक पारलौकिक समझ पर आधारित हैं। मानवता का यह दृष्टिकोण मौलिक मानवाधिकारों को जन्म देता है जो व्यक्तियों को अपने जीवन को आकार देने का संप्रभु अधिकार सुनिश्चित करते हैं। मानव अस्तित्व का यह अस्तित्वगत मूलभूत तत्व मौलिक रूप से प्रश्न से परे है: व्यक्ति की संप्रभुता अटूट है, यहां तक कि लोकतांत्रिक निर्णयों में भी।

## 3. लोक संप्रभुता: समाज अपनी चिंताओं पर स्वयं निर्णय लेता है

समुदाय के राजनीतिक नियमों का लोकतांत्रिक मूल होना चाहिए, यानी, उनका आधार चुनाव और जनमत संग्रह होना चाहिए। समाज का विकास मूलतः खुला है। लोक संप्रभुता राज्य स्तर पर व्यक्ति की संप्रभुता को दर्शाती है - दोनों संप्रभुताएँ परस्पर निर्भर हैं: जैसे व्यक्तिगत स्वतंत्रता राजनीतिक भागीदारी में विकसित होती है, वैसे ही लोकतंत्र राजनीतिक रूप से परिपक्व - और इस प्रकार स्वतंत्र - नागरिकों पर आधारित है।

## 4. हितों के संगठन के बजाय मूल्यों के माध्यम से एकजुटता

तानाशाही राज्यों के विपरीत, जिन्होंने स्वयं को व्यक्तिपरक हितों के आधार पर गठबंधन किया है जो विरोधाभासी और परिवर्तनशील हो सकते हैं, पश्चिम की बौद्धिक नींव एक पारलौकिक अवधारणा पर आधारित है जिसमें मूल्य और गरिमा समझौता योग्य नहीं हैं, बल्कि एक गहरी वस्तुनिष्ठ वास्तविकता और में निहित हैं, और इसलिए वास्तव में लागू होते हैं। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर, इस दार्शनिक विरोधाभास को पश्चिमी राष्ट्रों के बीच एक ऐसी एकजुटता की ओर ले जाना चाहिए जिस पर सबसे बड़े राजनीतिक मतभेदों के सामने भी कभी सवाल न उठाया जाए। इसमें तानाशाही विस्तार के खिलाफ एक साथ खड़ा होना भी शामिल है।

## 5. भू-राजनीतिक दृष्टिकोण: सार्वभौमिक पश्चिम

वैश्विक पश्चिम की परियोजना एक सार्वभौमिक परियोजना है जो तानाशाही राज्यों के साथ सह-अस्तित्व को केवल एक संक्रमणकालीन आधार पर नैतिक रूप से सही ठहरा सकती है। यदि कोई सभी समाजों की नींव के रूप में सार्वभौमिक मानवीय गरिमा और अधिकारों की वैधता को स्वीकार करता है, तो उन्हें नजरअंदाज करना एक ऐसा बुराई है जिसे दूर किया जाना चाहिए। तानाशाही व्यवस्थाएं अपनी प्रकृति से हीटिकाऊ अस्तित्व के अक्षम हैं

और इसलिए उनका अस्तित्व सीमित होता है, यही कारण है कि सार्वभौमिक पश्चिम पश्चिम की एक अंतर्निहित चिंता है<sup>30</sup> जिसे उसके सार से अलग नहीं किया जा सकता।

लोगों के प्रति लोकतांत्रिक जवाबदेही की कमी के कारण – अंततः वास्तविकता की दार्शनिक नींव के साथ उनके विरोधाभास के कारण – *तानाशाही सरकारों के पास, इस पारस्परिकता की कमी के कारण, सर्वोत्तम स्थिति में भी सीमित संप्रभुता होती है*<sup>31</sup>

*वास्तविक रियलपॉलिटिक*, यानी, एक राजनीतिक दृष्टिकोण जो हमेशा भू-रणनीतिक परिस्थितियों के साथ-साथ कार्रवाई के आधार के रूप में *मानवीय स्थिति* को देखता है, उसे इन संबंधों को कभी नहीं भूलना चाहिए। इसलिए यह केवल उन नींवों के आधार पर ही फल-फूल सकता है, जिन्हें यहां पश्चिम के स्वयंसिद्धों के रूप में प्रस्तुत किया गया है, चाहे दूर के भविष्य में उन्हें कुछ भी कहा जाए।

## ***उपसंहार: आने वाले पच्चीस वर्षों के लिए तीन सूत्र***

पूर्व-पश्चिम संघर्ष के अंत के बाद के आशावादी शुरुआती वर्षों के बाद, जिन्होंने दुनिया के लगभग हर कोने पर कम से कम एक अस्थायी प्रकाश डाला, सहस्राब्दी के मोड़ के बाद से कई क्षेत्रों में अंतरराष्ट्रीय स्थिति अंधकारमय हो गई है।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर, पिछले सदी का प्रणालीगत संघर्ष एक संशोधित रूप में लौट आया है: दमनकारी शासन का एक धुरी, जो तानाशाही या उदासीन राज्यों के एक नेटवर्क से जुड़ा है, ने स्वतंत्र दुनिया के लिए एक प्रति-आंदोलन स्थापित करने और धीरे-धीरे उसे विस्थापित करने का लक्ष्य निर्धारित किया है।

इस ऐतिहासिक चुनौती के सामने, वैश्विक पश्चिम लंबे समय से एक रक्षात्मक रणनीति अपनाए हुए है और उसने सैन्य, राजनीतिक और अपने दार्शनिक आधारों के संदर्भ में, तानाशाही लहर के बढ़ते खतरे की अनदेखी की है। इस क्षरण के दो पहलू हैं: एक ओर, कई राज्यों के भीतर तानाशाही प्रवृत्तियाँ उभर रही हैं, और दूसरी ओर, आपसी सहयोग - जिसमें सैन्य एकजुटता भी शामिल है - गंभीर खतरे में है।

इस ऐतिहासिक परीक्षा में, उदारवादी आंदोलन की नींव पर मौलिक रूप से लौटने की आवश्यकता है, लेकिन उससे भी अधिक इस बात पर विश्वास करने की कि एक दमनकारी आक्रमणकारी से खतरे में पड़ा एक स्वतंत्र समाज बिना लड़े आत्मसमर्पण नहीं करेगा। स्वतंत्रता की शक्ति की जड़ें राजनीतिक हेरफेर और सैन्य दमन से परे हैं: इतिहास ने दिखाया है और दिखाएगा कि यह अंततः विजयी होगी और अपना हक जताएगी। मुक्त विश्व

<sup>30</sup> 1990 के दशक के आर्थिक और संचार प्रौद्योगिकी वैश्वीकरण के विपरीत, जो हम अब देख रहे हैं वह एक दार्शनिक रूप से आधारित विश्वदृष्टि के संदर्भ में मानवीय गरिमा का वैश्वीकरण है। यह सबसे कम एक समान संस्कृति के बारे में है जिसके पीछे मानवता की जातीय विविधता को गायब होना पड़ेगा।

<sup>31</sup> अपवाद स्वरूप परिस्थितियों में, जैसे कि एक तानाशाही का उखाड़ फेंकना, किसी सरकार की वैधता लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं के बाहर अस्थायी रूप से उत्पन्न हो सकती है। हालाँकि, किसी भी स्थिति में और हर समय, व्यक्ति की संप्रभुता को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

की अवधारणा एक दिन समाप्त हो जाएगी, लेकिन इसलिए नहीं कि तानाशाही प्रणालियों ने इसे दबा दिया है, बल्कि इसलिए कि इसकी आवश्यक पूरक, दमनकारी लहर, उम्मीद है कि निकट भविष्य में थम जाएगी।

आने वाले दशकों के लिए चुनौतियों को तीन मूलभूत सिद्धांतों में संक्षेपित किया जा सकता है

## 1. मानवीय स्वतंत्रता और गरिमा के दार्शनिक आधारों और उनके राजनीतिक परिणामों पर लौटना

20वीं सदी की दार्शनिक शुद्धता को अब कई मामलों में उदासीनता और सापेक्षवाद ने बदल दिया है। जीवन के लगभग हर पहलू पर राय की भारी विविधता को देखते हुए, यहां तक कि सामान्य दिन-प्रतिदिन के राजनीतिक मुद्दे भी अक्सर बड़ी चुनौतियां बन गए हैं। यह स्वतंत्र दुनिया की नींव की खोज को आज और भी व्यर्थ प्रतीत कराता है, क्योंकि यह उन दार्शनिक या धार्मिक पहलुओं को छूता है जिन्हें कोई सहन कर सकता है, लेकिन निश्चित रूप से उन पर चर्चा नहीं करनी चाहिए। चूंकि यह निराशा अनिवार्य रूप से दृष्टिकोण की कमी और इस प्रकार अर्थ के संकट को जन्म देती है, इसलिए हमें यहीं से शुरू करना चाहिए।

सभी स्वतंत्र व्यक्ति और राज्य के अस्तित्व के लिए एक प्रारंभिक बिंदु के रूप में व्यक्ति की गरिमा, अनिवार्य रूप से वास्तविकता की एक पारलौकिक समझ को मानकर चलती है। इस नींव को - कम से कम इसके केंद्रीय पहलुओं और परिणामों में - राजनीतिक कार्रवाई के केंद्र में और कुछ हद तक उन लोगों की चेतना में भी स्थापित किया जाना चाहिए जो अंततः इससे अपना अस्तित्व प्राप्त करते हैं।

## २. स्वतंत्र विश्व की समुदाय के भीतर की अनिश्चितताओं के जवाब के रूप में भू-रणनीतिक अभिविन्यास और पारस्परिक सुरक्षा

उदार लोकतंत्रों में, स्वाभाविक रूप से यह जोखिम रहता है कि कोई देश *राजनीतिक* या *सैन्य रूप से* स्वतंत्र दुनिया के गठबंधन से पीछे हट जाएगा या उस पर सवाल उठाएगा। ऐसी उतार-चढ़ाव की पहले से आशंका करनी चाहिए और सभी स्तरों पर निवारक रूप से उनका मुकाबला करना चाहिए।

संप्रभु होने के नाते, लोग किसी भी समय ऐसे परिणामों के लिए मतदान कर सकते हैं जो मौजूदा मूल्यों के गठबंधन को कमजोर करते हैं। हालाँकि, *व्यक्तिगत लोकतंत्रों को स्वयं* अपनी समाप्ति के विरुद्ध संस्थागत रूप से संरक्षित किया जाना चाहिए। राज्यों के गठबंधन के ढांचे के भीतर और भी अधिक सुरक्षा वांछनीय होगी।

मूल्यों के एक गठबंधन के रूप में स्वतंत्र विश्व को बदले में एक ऐसे सुरक्षा जोखिम के खिलाफ खुद को लैस करना चाहिए जो तब उत्पन्न होगा जब एक केंद्रीय और/या कई छोटे सुरक्षा गारंटर गायब हो जाएं। भू-रणनीतिक रूप से प्रासंगिक राष्ट्रीय भंडार के अलावा,

इसके लिए एक ऐसी सुरक्षा संरचना की भी आवश्यकता है जो यथासंभव लचीली हो और राष्ट्रीय एकल प्रयासों से प्रतिरक्षित हो, और जो तानाशाही नेटवर्क द्वारा हमलों को यथासंभव अधिकतम हद तक रोकने में सक्षम हो।

### 3. अंतरराष्ट्रीय स्तर पर स्वतंत्र दुनिया के प्रति सुसंगत और निरंतर प्रतिबद्धता, स्वतंत्रता की एक ऐतिहासिक जीत की जागरूकता में

आपसी सुरक्षा का लक्ष्य केवल *राष्ट्रीय हित* के संकीर्ण अर्थ में व्यक्तिगत राज्यों की संप्रभुता की रक्षा करना ही नहीं है, बल्कि स्वतंत्र दुनिया की ऐतिहासिक उपलब्धियों को—यदि संभव हो तो बिना किसी बाधा के—संरक्षित करना और मौलिक मानवाधिकारों के सार्वभौमिक दावे को साकार करना भी है। इसलिए वैश्विक पश्चिम की रक्षा अंततः हमेशा नैतिक रूप से उचित राष्ट्रीय हित में होती है।<sup>32</sup>

इसलिए वैश्विक पश्चिम के राज्यों के लिए यह उचित होगा कि वे अपनी ही देशों में स्वतंत्र लोकतांत्रिक व्यवस्था का लगातार विस्तार करें और उसे सुरक्षित रखें, ताकि कमियों के कारण स्वतंत्रता के विचार को बदनाम न किया जा सके।

बाहरी रूप से, उन्हें स्पष्ट और निर्विवाद रूप से तानाशाही प्रतिमान के प्रति अपनी असहमति प्रदर्शित करनी चाहिए। दार्शनिक स्तर पर, तानाशाही का अस्तित्व निरपेक्ष<sup>33</sup> के प्रति अपमान है। उनका शासन और उनकी उपलब्धियाँ सापेक्ष हैं, उनकी विचारधारा, जहाँ तक वह मूर्त है, एक *नकली दर्शन* है जिसकी दीर्घकालिक नियति पूर्वनिर्धारित है: यह पूर्ण शून्यता में समाप्त होगी। उनके तानाशाहों की सारी महिमा एक दिन सत्य के सामने धूल में मिल जाएगी – सिवाय उन नेताओं के जो मार्ग बदलने की हिम्मत करते हैं।

उल्लेखित सूत्र एक यूटोपियन या कट्टरपंथी कार्यक्रम नहीं हैं, न ही वे कूटनीति, भू-रणनीति और *वास्तविक राजनीति*<sup>34</sup> को अस्वीकार करते हैं। वे पहले परंपरा की ओर एक सुसंगत और आधे-अधूरे मन से नहीं, बल्कि पूर्ण वापसी का आह्वान करते हैं, और फिर 21वीं सदी में तेजी से स्पष्ट होती अनिश्चितताओं से सुरक्षा की मांग करते हैं। यह तथ्य कि अंतिम लक्ष्य मानवाधिकारों की सार्वभौमिकता है - और कुछ नहीं सभी के लिए एक स्वतंत्र दुनिया या

<sup>32</sup> मानवाधिकारों और मौलिक मूल्यों पर आधारित नीति भूख, कठिनाइयों और उत्पीड़न के प्रति आँखें नहीं मूंद सकती, न ही यह दावा कर सकती है कि संघर्षों को हल करना "राष्ट्रीय हित" में नहीं है। बेशक, व्यवहार में किसी के अपने कार्रवाई के विकल्प कैसे दिखते हैं, यह एक बिल्कुल अलग मामला है।

<sup>33</sup> उन शासनों की अवास्तविकता का वर्णन करने के लिए इससे अधिक संक्षिप्त तरीका खोजना मुश्किल है जो मौलिक सैद्धांतिक और व्यावहारिक दिशाभ्रम की स्थिति में होते हैं।

<sup>34</sup> यहाँ रियलपॉलिटिक को अवसरवादी राजनीतिक चालबाजी के रूप में नहीं, बल्कि एक व्यापक राजनीतिक शैली के रूप में समझा गया है जो वास्तविकताओं—जिनमें पारलौकिक वास्तविकताएँ भी शामिल हैं—और उनके निहितार्थों से अवगत है।

एक *सार्वभौमिक पश्चिम*- इस पर अब पिछले तीन सौ वर्षों के मानवाधिकार घोषणापत्रों के संबंध में सवाल नहीं किया जाना चाहिए।<sup>35</sup>

© द 20वीं सेंचुरी रिसर्च प्रोजेक्ट – फिलॉसफी ऑफ द ग्लोबल वेस्ट

अधिक जानकारी और संपर्क:

20वीं सदी अनुसंधान परियोजना

[www.20th-century.net](http://www.20th-century.net)

वैश्विक पश्चिम की दर्शनशास्त्र

[www.theglobalwest.com](http://www.theglobalwest.com)



[www.steff.international/CONTACT/](mailto:www.steff.international/CONTACT/)

<sup>35</sup> 1948 का मानवाधिकारों का सार्वभौम घोषणापत्र मानवीय गरिमा की बात करता है, जबकि इसके अमेरिकी और फ्रांसीसी पूर्ववर्ती अहरणीय अधिकारों की बात करते हैं, जिनमें से प्रत्येक एक गैर-सकारात्मकवादी नींव का संकेत देता है।

